सरहदी गांधी की याद को आखिरी प्रणाम!

प्रेम सिंह

एक साल से ऊपर हो गया जब हरियाणा के मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर को फरीदाबाद स्थित बादशाह खान अस्पताल का नाम अटलबिहारी वाजपेयी के नाम पर कर देने की 'इच्छा' (डिज़ायर) हुई थी। अपनी 'इच्छा' को पूर्ण करने का लिखित आदेश उन्होंने 3 दिसंबर 2020 को राज्य के स्वास्थ्य निदेशक को दिया था। स्वास्थ्य निदेशक ने 14 दिसंबर 2020 को वह आदेश अस्पताल के प्रिंसिपल मेडिकल अफसर को भेजा, और 15 दिसंबर से अस्पताल का काम-काज नए नाम से शुरू कर दिया गया। कहने की जरूरत नहीं कि मुख्यमंत्री खट्टर ने अपनी 'इच्छा' पूर्ण करने से पहले प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से सलाह-मशविरा किया होगा। हो सकता है उन्होंने प्रधानमंत्री की इच्छा को अपनी इच्छा बना कर स्वास्थ्य निदेशक को एक सात दशक पुराने अस्पताल का नाम बदलने का आदेश दिया हो। फरीदाबाद के तत्कालीन चीफ मेडिकल अफसर ने अस्पताल का नाम बदलने पर आहत हुए लोगों को कहा भी था कि वे इस मामले में प्रधानमंत्री कार्यालय से संपर्क करें, जिसके पास अस्पताल का नाम बदलने का प्रभार है।

हालांकि, अस्पताल का नाम बदलने का काम कोरोना महामारी के दौर में हुआ, फिर भी उसका काफी विरोध हुआ था। विरोध करने वालों में कांग्रेस के कुछ स्थानीय नेता और कुछ सामाजिक-धार्मिक संगठन थे। राष्ट्रीय स्तर पर नेताओं या बुद्धिजीवियों का ध्यान इस घटना पर नहीं गया। मैं खुद उस बीके अस्पताल से जुड़ी घटना पर ध्यान नहीं दे पाया, जिसका नाम बचपन से ही मेरे कानों में पड़ता रहा था। अस्पताल का नाम बदलने के सरकार के फैसले का सच्चा विरोध न्यू इंडस्ट्रियल टाउन (एनआईटी) फरीदाबाद के उन निवासियों का था, जिनके पुरखे विभाजन के बाद उत्तर-पश्चिम सरहदी सूबे के बन्नू, डेरा इस्लामी खान, कोहाट, पेशावर, हज़ारा, मर्दान जैसे जिलों से यहां आकर बसे थे।

अपने वतन से दूर फरीदाबाद में बसाये गए वे लोग अब्दुल गफ्फार खान को अपना प्रिय नेता मानते थे। उनमें बहुत से लोग स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बादशाह खान द्वारा 1930 में गठित खुदाई खिदमतगार से जुड़े हुए थे। उन लोगों ने अपने प्रिय नेता को हमेशा अपने आस-पास बनाए रखने की इच्छा के तहत अपनी पहल और मेहनत से यह सिविल अस्पताल बनाया था। बादशाह खान भारत आने पर इन लोगों से मिलने आते थे। अस्पताल का उद्घाटन 5 जून 1951 को तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने किया था। अस्पताल की उद्घाटन पट्टिका पर लिखा गया था : "बादशाह खान अस्पताल, फरीदाबाद के लोगों द्वारा अपने हाथों से निर्मित अस्पताल का नाम उनके प्रिय नेता खान अब्दुल गफ्फार खान के नाम पर रखा गया था।" इन लोगों ने, ज़ाहिर है, वे मुसलमान नहीं हैं, अस्पताल को अपनी पहचान के साथ जोड़ते हुए उसका नाम नहीं बदलने की प्रार्थना सरकार और मुख्यमंत्री से की थी।

यह महत्वपूर्ण नहीं है कि भारत के प्रधानमंत्री ने अस्पताल का उद्घाटन किया था। महत्वपूर्ण यह तथ्य है कि भारतीय उपमहाद्वीप की सुदूर सरहद से आकर हरियाणा (तब पंजाब) के नए बसाए गए टाउनशिप में आकर बसे बादशाह खान के लोगों ने अपनी पहल और परिश्रम से इस अस्पताल का निर्माण किया था। यह अस्पताल बादशाह खान के प्रति उनके प्रेम के साथ उनकी पहचान, और स्वतंत्रता आंदोलन में

सरहदी सूबे के लोगों की कुर्बानियों का स्मारक था। मुख्यमंत्री खट्टर की 'इच्छा' ने एक झटके में वह स्मारक समाप्त कर दिया।

कोई भी इच्छा फल की इच्छा होती है। मुख्यमंत्री खट्टर ने किस फल की प्राप्ति के लिए यह 'इच्छा' की थी, जानना मुश्किल नहीं है। दरअसल, वह उनके पितृ-संगठन आरएसएस की दो-धारी इच्छा है : एक, स्वतंत्रता आंदोलन की कुर्बानियों और मूल्यों को मिटाते जाना। दो, उपनिवेशवाद-पूर्व के 'मुस्लिम-राज' के अवशेषों को हमेशा के लिए मिटा देना। ऐसा करने में एक तरफ वह शौर्य-प्रदर्शन का सुख लेता है, और दूसरी तरफ अपने सपनों का 'हिंदू-राष्ट्र' कायम करने का गर्व अनुभव करता है। मुख्यमंत्री खट्टर अपने फैसले पर गद-गद होते होंगे कि उन्होंने बादशाह खान अस्पताल का नाम बदल कर 'हिंदू-राष्ट्र' की सेवा में अपना अकिंचन योगदान कर दिया है। खोखले शौर्य और गर्व की उत्तेजना में लिप्त आरएसएस के बच्चे सचमुच देख ही नहीं पाते कि कितने दयनीय हो जाते हैं। लिहाजा, मुख्यमंत्री खट्टर अथवा प्रधानमंत्री से फैसले पर बादशाह खान की महान शख्सियत का वास्ता देकर पुनर्विचार की अपेक्षा करना निरर्थक है। जहां गांधी की तस्वीर पर निशाना साध कर फिर-फिर गोली मारी जाती हो, वहां सरहदी गांधी को भला कौन पूछता है!

कुछ मित्रों का मानना है कि भले ही अस्पताल का नाम बदलने की घटना को एक साल से ऊपर हो चुका है, फैसले को बदलवाने के लिए संघर्ष शुरू करना चाहिए। उन्हें लगता है कि बादशाह खान जैसी महान शख्सियत का वास्ता देने से वृहत्तर नागरिक समाज आंदोलन से जुड़ेगा, और सरकार पर फैसला बदलने का दबाव बनेगा। मुझे व्यक्तिगत तौर पर अब प्रतिरोध का कोई मायना नजर नहीं आता। इस मामले में प्रतिरोध की सच्ची इच्छा (ट्रू विल टू प्रोटेस्ट) होती तो मुख्यमंत्री खट्टर की 'इच्छा' के वक्त ही प्रतिरोध सामने आ गया होता; और वह प्रतिरोध, संभव है, खट्टर साहब को फैसला बदलने पर मजबूर भी कर देता। लेकिन वैसी इच्छा-शक्ति न विपक्ष में दिखी, न बुद्धिजीवियों में। फैसले को बदलने के लिए उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत से आए लोगों अथवा उनके वारिसों ने स्पष्टता और मजबूती के साथ अपनी बात रखी। लेकिन उन्हें फरीदाबाद के नागरिक समाज और जनता का साथ नहीं मिला। राजनीतिक और बौद्धिक नेतृत्व की इच्छा-शक्ति कमजोर हो जाए तो जनता में इच्छा-शक्ति भला कहां से आएगी?

इसलिए बेहतर यह होगा कि इस घटना के बहाने यह विचार करें कि प्रतिरोध की सच्ची इच्छा नागरिक समाज में क्यों इस कदर घट गई है कि ऐसे नितांत गलत फैसलों पर भी वह पूरी शक्ति के साथ सक्रिय नहीं हो पाती? इस कठिन सवाल का जवाब काफी विस्तार मांगता है। संक्षेप में इसके पीछे एक बहुत-ही सीधी और स्पष्ट परिघटना को पढ़ा जा सकता है। पिछले 30 सालों में कारपोरेट राजनीति के उत्तरोत्तर विस्तार के चलते समाज में समुचित राजनीतिक चेतना का संकुचन होता गया है। अस्पताल का नाम बदलने की घटना पर कांग्रेस के एक वरिष्ठ स्थानीय नेता एसी चौधरी ने कहा था कि मुख्यमंत्री खट्टर को अब्दुल गफ्फार खान के बारे में सही जानकारी नहीं दी गई होगी। मुख्यमंत्री को सही जानकारी दी गई होती तो वे अस्पताल का नाम बदलने का फैसला नहीं करते। उन्होंने भरोसा जताया था कि वे मुख्यमंत्री को सही जानकारी देंगे तो वे फैसला बदल देंगे। राजनीतिक चेतना होती तो चौधरी साहब अफसोस के साथ यह सवाल उठाते कि अब्दुल गफ्फार खान जैसी शख्सियत को नहीं जानने वाला नेता एक राज्य का मुख्यमंत्री बना बैठा है।

यहां यह भी ध्यान देने की बात है कि हरियाणा में भाजपा और जेजेपी की मिली-जुली सरकार है। यानी चौधरी देवीलाल के संघर्ष की विरासत को भी बादशाह खान को अपमानित करने के धतकर्म में घसीट लिया गया है। कारपोरेट राजनीति के दौर में राजनीतिक चेतना के संकुचन का हाल यह है कि धड़ल्ले से नरेंद्र मोदी भगवान का और अरविंद केजरीवाल क्रांति का अवतार मान लिए गए हैं। बादशाह खान का पक्ष लेने वाले मोदी और उनके भक्तों की खिल्ली उड़ाते हैं, लेकिन केजरीवाल के क्रांति-अवतार होने पर उन्हें कोई संदेह नहीं है। वे केजरीवाल के नेतृत्व में दिल्ली में तीन बार 'तिरंगी क्रांति' और अब पंजाब में 'बसंती क्रांति' संपन्न कर चुके हैँ। 'बसंती क्रांति' का उत्सव सीधे भगत सिंह के गांव में मनाया गया। प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष खेमे में यह फैसला हुआ है कि देश के बाकी राज्यों में केजरीवाल के नेतृत्व में इंकलाब जारी रहेगा। देश में संपन्न हो चुकी प्रति-क्रांति की हांडी में पकने वाली यह अजीब खिचड़ी है!

अस्पताल का नाम बदलने का विरोध करने वालों की तरफ से बहुत भले अंदाज में यह कहा गया कि वाजपेयी के नाम से सरकार कोई नया अस्पताल अथवा कोई अन्य परियोजना बना सकती है। राजनीतिक चेतना होती तो यह तुरंत समझ में आ जाता कि मामला दरअसल बादशाह खान बनाम वाजपेयी का बनता ही नहीं है। बादशाह खान एक अडिग सत्याग्रही और स्वतंत्रता सेनानी थे। वाजपेयी जो भी रहे हों, न सत्याग्रही थे, न स्वतंत्रता सेनानी। कारपोरेट राजनीति के रास्ते पर अराजनीतिकरण की जो महामारी फैलती जा रही है, उसे अगर अपने को प्रगतिशील और रोशन खयाल कहने वाला नागरिक समाज नहीं रोक सकता, नहीं रोकना चाहता, तो उसे सरहदी गांधी और उनकी विरासत से मुक्ति पा लेनी चाहिए। उसी तरह जिस तरह मुख्यमंत्री खट्टर ने सरहदी गांधी को उनके नाम पर बने अस्पताल से मुक्त कर दिया है। हम सरहदी गांधी की विरासत के योग्य वारिस नहीं रह गए हैं। लिहाजा, उनकी याद को आखिरी प्रणाम।

प्रति-क्रांति के पाले में खड़े होकर आरएसएस/भाजपा को ललकारने वाले लोगों को यह निराशावाद लग सकता है। जबकि यह नए अथवा निगम भारत की कड़वी हकीकत है।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक हैं*)